RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-4, सितम्बर अक्टूबर नवम्बर 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16	अंक - 4	सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वेदों में ब्रह्म सत्ता का तात्विक स्वरूप

किरन बड़ेरिया

सहायक आचार्य समाज विज्ञान विभाग

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वेदों में ब्रह्म को सम्पूर्ण सृष्टि का मूल कारण और सर्वोच्च सत्ता माना गया है। वही इस जगत् का कर्ता, धर्ता तथा संहर्ता है। सृष्टि की उत्पत्ति, उसकी निरन्तरता और अन्ततः उसका लय तीनों प्रक्रियाएँ ब्रह्म की ही सत्ता से सम्पन्न होती हैं। ब्रह्म किसी सीमित शक्ति या व्यक्त रूप का नाम नहीं है, बल्कि वह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक ऐसी परम सत्ता है, जो दृश्य और अदृश्य दोनों जगतों का आधार है। वेदों के अनुसार वही सत् और असत् का कारण है, अर्थात् मूर्त और अमूर्त, ज्ञेय और अज्ञेय—सब उसी से उत्पन्न होते हैं।

यजुर्वेद में ब्रह्म को सृष्टि की सर्वप्रथम सत्ता कहा गया है, जिससे सभी तत्त्वों की उत्पत्ति हुई। अथर्ववेद उसे 'ज्येष्ठ' अर्थात् सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्राचीन सत्ता कहता है। यह संकेत करता है कि ब्रह्म किसी अन्य सत्ता पर आश्रित नहीं है, बल्कि सभी शक्तियाँ और अस्तित्व उसी पर आश्रित हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि तथा अन्य सभी प्रकाशमान तत्त्व उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। ब्रह्म स्वयं प्रकाशस्वरूप है और उसी से समस्त ज्योतिर्मय वस्तुओं की उत्पत्ति होती है।

वेदों में ब्रह्म को ज्योतिर्मय बताया गया है। यजुर्वेद में यह प्रश्न उठाया गया है कि सूर्य के समान प्रकाशमान कौन है, और इसका उत्तर ब्रह्म के रूप में दिया गया है। अथर्ववेद के अनुसार ब्रह्म अद्वितीय ज्योतिपुंज है, जो स्वयं प्रकाशित है और दूसरों को प्रकाशित करता है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म बाह्य प्रकाश पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वही सभी प्रकाशों का मूल स्रोत है। सूर्य, तारे और अन्य दीप्तिमान पिण्ड उसी महाज्योति के अंश हैं।

अथर्ववेद में ब्रह्म के एकत्व का गम्भीर और व्यापक विवेचन मिलता है। वेद स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ब्रह्म केवल एक है, उसका कोई दूसरा नहीं है। समष्टि दृष्टि से देखने पर सभी देवता उसी एक ब्रह्म के विभिन्न रूप प्रतीत होते हैं। इस एकीकरण की प्रक्रिया को 'एकवृत' कहा गया है, जहाँ अनेकता का भास समाप्त होकर एकत्व का बोध होता है। ब्रह्म को न दो कहा जा सकता है, न तीन और न ही किसी संख्या में बाँधा जा सकता है, क्योंकि वह संख्या और सीमाओं से परे एकमात्र सत्ता है।

वेदों के अनुसार ब्रह्म केवल बाह्य जगत् में ही नहीं, बल्कि प्रत्येक जीव के हृदय-मन्दिर में अन्तर्यामी रूप से विराजमान है। वह समस्त संसार में ओत-प्रोत होकर विद्यमान है। कोई भी चर या अचर, स्थावर या जंगम सत्ता उससे रहित नहीं है। वह ऋत का तन्तु है, अर्थात् विश्व-व्यवस्था और नैतिक नियमों का आधार है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी ऋत के अनुसार संचालित होता है।

ब्रह्म को जानने का मार्ग केवल इन्द्रियज्ञान नहीं है। वेदों में कहा गया है कि ब्रह्म का बोध तप,

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

साधना और आत्मसंयम द्वारा होता है। जब मनुष्य तप के माध्यम से अपने भीतर की अशुद्धियों को दूर करता है, तब वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। इस प्रकार वेदों में ब्रह्म को निराकार, सर्वव्यापक, ज्योतिर्मय, एक और सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया गया है, जो समस्त अस्तित्व का मूल आधार है।

वेदों के अनुसार ब्रह्म एक ही होते हुए भी सर्वरूप है। ऋग्वेद में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वही ब्रह्म पिता है, वही विधाता है और वही विश्वकर्मा है। वास्तव में उस एक ही सत्ता के अनेक नाम हैं। वह विभिन्न देवताओं के नामों से प्रसिद्ध है, किन्तु तत्त्वत: वह एक ही है। अथर्ववेद और विशेष रूप से अथर्ववेद में इस तथ्य का अत्यन्त विस्तार से वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार उसी एक ब्रह्म को अर्थमा, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि, सूर्य, यम, मृत्यु, अमृत तथा महाशक्ति (अभ्व) आदि नामों से पुकारा गया है। चन्द्रमा, नक्षत्र तथा सम्पूर्ण खगोलीय व्यवस्था उसी ब्रह्म के आदेश और नियम के अनुसार कार्य करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि बहुदेववाद के पीछे वास्तव में एक अद्वितीय सत्ता का ही तत्त्व निहित है।

अथर्ववेद में ब्रह्म को सनातन और नूतन दोनों कहा गया है। यह विचार अत्यन्त दार्शनिक और गूढ़ है। जिस प्रकार दिन और रात निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया हैं—जो बीत गए वे प्राचीन कहलाते हैं और जो वर्तमान में हैं वे नवीन—उसी प्रकार ब्रह्म भी सनातन होते हुए नवीन प्रतीत होता है। सनातन का ही विकास नवीन के रूप में प्रकट होता है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि सनातन और नूतन में कोई मौलिक भेद नहीं है, केवल रूप का परिवर्तन है। जब प्राचीन को नवीन रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो वह नवीन प्रतीत होता है और नवीन को प्राचीन परम्परा में रखा जाए तो वह प्राचीन कहलाता है। यह अवधारणा सभ्यता और संस्कृति के निरन्तर विकास को दर्शाती है, जहाँ मूल तत्त्व वही रहता है, केवल अभिव्यक्ति बदलती है।

अथर्ववेद में ब्रह्म को तीनों लिंगों से युक्त बताया गया है। वेद कहता है कि वही ब्रह्म पुंलिंग भी है और स्त्रीलिंग भी। वह कुमार भी है और कुमारी भी। स्वयं 'ब्रह्म' शब्द नपुंसकलिंग है, अत: ब्रह्म तीनों लिंगों का बोध कराता है। परन्तु तत्त्वत: ब्रह्म अलिंग है, अर्थात् वह किसी भी लिंग से बँधा हुआ नहीं है। वह न पुरुष है, न स्त्री और न नपुंसक। ब्रह्म वास्तव में चेतना या ऊर्जा है। उसका कोई निश्चित रूप, रंग या लिंग नहीं है। वह जिस सत्ता या माध्यम से जुड़ता है, उसी का रूप, रंग और लिंग ग्रहण कर लेता है। इसी कारण उसे ईश्वर, शक्ति, देवी, देवता आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है।

अथर्ववेद में यह भी कहा गया है कि पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति होती है। उस पूर्ण का पालन भी पूर्ण ही करता है और उसी पालक पूर्ण को जानना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्ण ब्रह्म से ही यह सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई है और यह सृष्टि भी अपने आप में पूर्ण है। इस सृष्टि का पालन-पोषण और संरक्षण वही पूर्ण ब्रह्म करता है। संसार में वही ब्रह्म जानने योग्य है। इसी वेदवाक्य के आधार पर आगे चलकर 'पूर्णमद: पूर्णमिदं' जैसे प्रसिद्ध उपनिषद् मंत्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई।

अथर्ववेद में ब्रह्म के साथ माया का भी उल्लेख मिलता है। यही माया आगे चलकर वेदान्त दर्शन का एक केन्द्रीय तत्त्व बन जाती है। माया का अर्थ अविद्या या अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण ब्रह्म के शुद्ध और वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष बोध नहीं हो पाता। अथर्ववेद में उदाहरण देते हुए कहा गया है कि जैसे चक्र के अरे उसकी नाभि से जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार समस्त देवता और मनुष्य उस एक ब्रह्म से जुड़े हुए हैं।

किन्तु माया से आवृत होने के कारण मनुष्य उस ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता। जब अज्ञान का आवरण हटता है, तब ब्रह्म अपने शुद्ध, पूर्ण और अद्वितीय रूप में प्रकट होता है।

वेदों के अनुसार ब्रह्म को सूत्रात्मा कहा गया है, अर्थात् वह ऐसी एक दिव्य सत्ता है जो सम्पूर्ण जीव-जगत् को एक अदृश्य सूत्र में बाँधकर रखती है। यह सूत्र भौतिक नहीं है, बल्कि चेतना और सत्ता का तन्तु है। उसी एक सूत्र के कारण समस्त प्राणी, वनस्पति, प्रकृति और ब्रह्माण्ड आपस में जुड़े हुए हैं। इस सूत्रात्मक शक्ति को ही आत्मा, परमात्मा या ब्रह्म कहा गया है। इसी कारण मानवमात्र में मूलत: एकत्व की अनुभूति पाई जाती है। जब मनुष्य इस सत्य को अनुभव करता है कि वही एक ब्रह्म सभी में व्याप्त है, तब उसके भीतर विश्व-बन्धुत्व, विश्व-प्रेम और विश्व-हित की भावना स्वत: जाग्रत हो जाती है। अथर्ववेद में इस सूत्रात्मा का अत्यन्त सारगर्भित उल्लेख मिलता है, जहाँ कहा गया है कि जो व्यक्ति उस सूत्र के सूत्र को जान लेता है, वही महान् ब्रह्म को जान लेता है। सम्पूर्ण संसार उसी सूत्रात्मा में ओत-प्रोत है। इस सूत्रात्मारूपी ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर साधक को समस्त जीव-जगत् के साथ एकात्मता का अनुभव होने लगता है और भेदभाव की भावना स्वत: समाप्त हो जाती है।

वेदों में ब्रह्म को 'हंस' भी कहा गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद—तीनों में ब्रह्म के लिए हंस शब्द का प्रयोग मिलता है। हंस का प्रतीकात्मक अर्थ अत्यन्त गहन है। पहला अर्थ यह है कि हंस में नीर-क्षीर-विवेक का गुण माना गया है। कहा जाता है कि हंस जल और दूध के मिश्रण में से दूध को पृथक् कर लेता है। यही विवेकशीलता ब्रह्म का मौलिक गुण है। ब्रह्म सत् और असत्, सत्य और असत्य, हेय और उपादेय, ऋत और अनृत, कर्तव्य और अकर्तव्य, गुण और दोष के बीच विवेक स्थापित करता है और मनुष्य को उपादेय, सत्य और ऋत को स्वीकार करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार ब्रह्म विवेक का सर्वोच्च आधार है।

हंस का दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि वह जल में रहते हुए भी जल से निर्लेप रहता है। जल उसके पंखों को स्पर्श तो करता है, किन्तु उसे भिगो नहीं पाता। इसी प्रकार ब्रह्म इस संसार के कण-कण में व्याप्त होने पर भी उससे निर्लिप्त रहता है। यह निर्लेपता, अनासक्ति, असंगता और नि:स्पृहता ब्रह्म का स्वभाव है। वह संसार में रहते हुए भी संसार से बँधता नहीं है। यही कारण है कि ब्रह्म कर्मफल, सुख-दु:ख और द्वन्द्वों से परे रहता है।

वेदों में ब्रह्मरूपी हंस को 'त्रिवृत्' भी कहा गया है। त्रिवृत् का अर्थ है—तीन तत्त्वों का समावेश। ब्रह्म में तीन तत्त्वों का समन्वय माना गया है—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। जीवात्मा ब्रह्म का ही अंश है, इसलिए जीव और ब्रह्म के बीच गहरा सम्बन्ध है। दूसरी ओर, ब्रह्म प्रकृति का निमित्त कारण है, अत: कार्य-कारण के सम्बन्ध से वह प्रकृति से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार ब्रह्म, जीव और प्रकृति—तीनों का परस्पर समन्वय एक समग्र तत्त्वमीमांसा का निर्माण करता है। इसी समन्वित रूप को त्रिवृत् या त्रिवृत्करण कहा गया है। यह अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि ब्रह्म न केवल परम सत्ता है, बल्कि वही जीव और प्रकृति के माध्यम से सम्पूर्ण सृष्टि को अर्थ और गति प्रदान करता है।

ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों में ब्रह्म अथवा ईश्वर का 'हंस' के रूप में प्रतीकात्मक वर्णन मिलता है। यह हंस किसी पक्षी मात्र का संकेत नहीं है, बल्कि वह एक गहन दार्शनिक प्रतीक है, जिसके माध्यम से ब्रह्म के सूक्ष्म स्वरूप को समझाया गया है। इस वेदवाक्य में ब्रह्म के जिन गुणों का उल्लेख हुआ है, वे उसके

सर्वव्यापक, पवित्र और सत्यस्वरूप होने को स्पष्ट करते हैं। कहा गया है कि वह शुचिबद्ध है, अर्थात् वह पवित्र स्थानों में निवास करता है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म अशुद्धता, अज्ञान और अविवेक में नहीं, बल्कि शुद्ध चेतना और निर्मल अंत:करण में ही प्रकट होता है।

वेद यह भी कहते हैं कि ब्रह्म अतिथि के समान मानव शरीर में निवास करता है। वह स्थायी अतिथि की भाँति प्रत्येक मनुष्य के भीतर विद्यमान है, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य उसका सत्कार नहीं कर पाता। नृषद् कहकर यह प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्म सम्पूर्ण मानवमात्र के हृदय में स्थित है। वह किसी एक वर्ग, जाति या समुदाय तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रत्येक जीव के अन्त:करण में विद्यमान है। वरसद् के माध्यम से यह संकेत मिलता है कि उसका प्रकाश विशेष रूप से उन्हीं हृदयों में प्रकट होता है जो श्रेष्ठ, पवित्र और साधनासम्पन्न हैं।

ऋतसद् और ऋतजा: शब्दों द्वारा ब्रह्म के सत्यस्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया गया है। वेदों के अनुसार ब्रह्म को सत्यप्रियता और सत्यनिष्ठा के माध्यम से ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है। सत्य के आचरण से ही ब्रह्मनिष्ठा और तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म स्वयं ऋत् है, अर्थात् वह शाश्वत सत्य और विश्व-नियम का साक्षात् स्वरूप है। उसे बृहत् कहा गया है, जो इस बात का सूचक है कि वह संसार की सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान सत्ता है।

अथर्ववेद में सम्पूर्ण जगत् को एक चक्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसे ब्रह्मचक्र अथवा ब्रह्माण्डरूपी चक्र कहा गया है। इस चक्र की एक नाभि है, जो ब्रह्म है। वही केन्द्रबिन्दु सम्पूर्ण सृष्टि को धारण किए हुए है। इस एकचक्र रथ में असंख्य अरे लगे हुए हैं, जो ब्रह्म की विविध शक्तियों के प्रतीक हैं। ये शक्तियाँ ही इस सृष्टि को गतिशील बनाए हुए हैं। यह चक्र आगे-पीछे, चारों दिशाओं में निरन्तर चलता रहता है। वेदों में कहा गया है कि ब्रह्म ने अपनी आधी शक्ति से इस व्यक्त जगत् की रचना की है, जबकि उसकी शेष आधी शक्ति अव्यक्त रूप में विद्यमान है।

अथर्ववेद में ब्रह्म के इसी अव्यक्त स्वरूप का गूढ़ विवेचन मिलता है। कहा गया है कि वह ब्रह्म न केवल पृथ्वी में स्थित है और न ही केवल द्युलोक में, बल्कि वह दोनों से बाहर भी है और दोनों के भीतर भी व्याप्त है। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्म निर्लेप और असंग है, इसलिए वह किसी एक लोक या स्थान से बँधा नहीं है। साथ ही वह कण-कण में व्याप्त है, इसलिए पृथ्वी और द्युलोक दोनों में उसकी उपस्थिति है। उसी की सत्ता से वृक्षों, वनस्पतियों और समस्त प्राणियों में जीवन-शक्ति विद्यमान है।

ब्रह्म अव्यक्त और सर्वव्यापी होने के कारण विरोधी प्रतीत होने वाले गुणों का भी समावेश करता है। यजुर्वेद में इसी कारण कहा गया है कि वह गतिशील भी है और गतिरहित भी, वह दूर भी है और समीप भी है, वह सबके भीतर भी है और सबके बाहर भी है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म स्वयं शक्ति का मूल स्रोत है। उसकी सत्ता से ही संसार में गति और परिवर्तन सम्भव है, परन्तु स्वयं वह परिवर्तन से परे है। वह सर्वत्र व्याप्त होने के कारण कहीं आता-जाता नहीं है। वह दूरस्थ प्रतीत होता है, क्योंकि अज्ञान के कारण मनुष्य उससे दूरी अनुभव करता है, और वही ब्रह्म आत्मज्ञान होने पर समीपतम हो जाता है। अथर्ववेद में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि उसकी स्थिरता दिखाई देती है, गति नहीं; वह दूर होते हुए भी समीप है और समीप होते हुए भी दूर है। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक वह समीप होते हुए भी दूर प्रतीत होता है, और आत्मज्ञान होने पर वही ब्रह्म दूरस्थ होते हुए भी अत्यन्त समीप अनुभव होता है।

निष्कर्षत: उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वेदों में ब्रह्म को एक, अद्वितीय, सर्वरूप, सर्वव्यापक और सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया गया है। वह सूत्रात्मा के रूप में समस्त जीव-जगत् को एक अदृश्य तन्तु में बाँधकर रखता है, जिसके कारण मानवमात्र में एकत्व, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम की भावना उत्पन्न होती है। ब्रह्म को हंस के प्रतीक द्वारा विवेक, निर्लेपता और असंगता का आधार बताया गया है तथा त्रिवृत् रूप में ब्रह्म-जीव-प्रकृति के समन्वय का दार्शनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में ब्रह्म को सत्यस्वरूप, ऋत का आधार, बृहत् शक्ति और अव्यक्त-व्यक्त दोनों रूपों में स्वीकार किया गया है। ब्रह्मचक्र की अवधारणा द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी एक केन्द्रबिन्दु ब्रह्म के चारों ओर गतिशील है। ब्रह्म निर्लेप और असंग होते हुए भी कण-कण में व्याप्त है तथा आत्मज्ञान के अभाव में दूर प्रतीत होकर आत्मबोध होने पर अत्यन्त समीप अनुभव होता है। इस प्रकार वेदों का ब्रह्म-दर्शन एकत्व, सत्य, समन्वय और सार्वभौमिक चेतना पर आधारित एक उच्चकोटि की दार्शनिक और मानवतावादी दृष्टि प्रस्तुत करता है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जोशी, के.एल., आर्य, रवि प्रकाश और विल्सन, एच.एच. (2022), द फोर वेदस: ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, परिमल पब्लिकेशन प्रा. लि., दिल्ली*
2. *जोशी, के.एल., आर्य, रवि प्रकाश और विल्सन, एच.एच. (2022), द फोर वेदस: यजुर्वेद, परिमल पब्लिकेशन प्रा. लि., दिल्ली*
3. *स्वामी दयानन्द सरस्वती (2019), ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद (हिंदी अनुवाद), विजय कुमार गोविन्दराम हासनंद, दिल्ली*
4. *आचार्य रामगोपाल शुक्ल, वेदों का सेट (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), पूजा प्रकाशन, दिल्ली*
5. *दयानन्द संस्थान, जन-ज्ञान (1970), ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, दयानन्द संस्थान, दिल्ली*
6. *Griffith, R. T. H. (1895-96), The Hymns of the Atharva Veda., E.J. Lazarus & Co., Benares, India.*
7. *Whitney, W. D., & Lanman, C. R. (1905), Atharva-Veda Sahita, Harvard Oriental Series, Vol.7-8, Harvard University, Cambridge, USA.*
8. *K.L. Joshi, R.P. Arya, & H.H. Wilson (Eds.) (2022), The Four Vedas : Rigveda, Samaveda, Yajurveda, Atharvaveda, Parimal Publication Pvt. Ltd., Delhi, India.*